SHODH SAMAGAM
ISSN : 2581-6918 (Online), 2582-1792 (PRINT)

साहित्य अकादमी और इक्कीसवीं सदी के हिंदी उपन्यासों पर एक दृष्टि

आकांक्षा पाण्डेय, शोधार्थी, **वंदना त्रिपाठी,** पी–एचडी, शोध निर्देशक, हिन्दी विभाग
टी.आर.एस. कॉलेज, रीवा, मध्यप्रदेश, शोध केन्द्र, अवधेश प्रताप सिंह विश्वविद्यालय, रीवा, मध्यप्रदेश, भारत

ORIGINAL ARTICLE

Authors
आकांक्षा पाण्डेय, शोधार्थी
वंदना त्रिपाठी, पी–एचडी, शोध निर्देशक
E-mail : akankshapandey22198@gmail.com

shodhsamagam1@gmail.com

Received on : 14/12/2025
Revised on : 14/02/2026
Accepted on : 24/02/2026
Overall Similarity : 00% on 16/02/2026

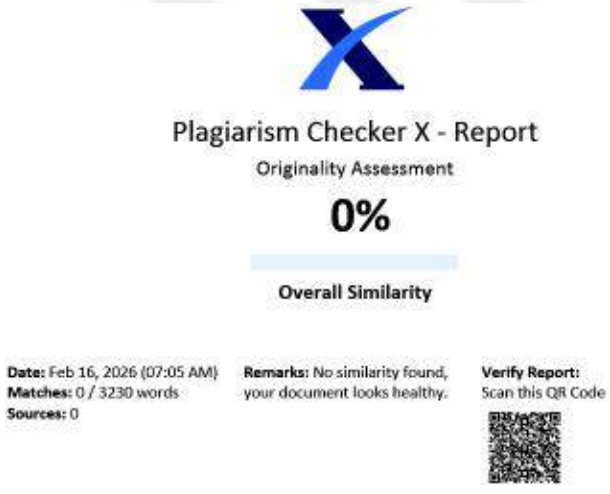

शोध सार

यह शोधपत्र साहित्य अकादमी और इक्कीसवीं सदी के हिंदी उपन्यासों के आपसी संबंध तथा उनके साहित्यिक, सामाजिक और वैचारिक सरोकारों का समग्र अध्ययन प्रस्तुत करता है। साहित्य अकादमी भारतीय साहित्य की केंद्रीय संस्था के रूप में न केवल साहित्यकारों को सम्मानित करती है, बल्कि समकालीन हिंदी साहित्य की प्रवृत्तियों, विषय–वस्तु और संवेदनाओं को पहचान दिलाने में भी महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है। इक्कीसवीं सदी के हिंदी उपन्यासों में सामाजिक परिवर्तन, ऐतिहासिक स्मृति, स्त्री विमर्श, दलित चेतना, भूमंडलीकरण, बाजारवाद, सांप्रदायिकता, पहचान और हाशिए के समुदायों के संघर्ष जैसे विषय प्रमुख रूप से उभरकर सामने आते हैं। इस शोध में साहित्य अकादमी पुरस्कार से सम्मानित उपन्यासों जैसे 'कलि–कथारू वाया बाइपास', कितने पाकिस्तान, क्याप, इन्हीं हथियारों से, रेहन पर रग्घू, मिलजुल मन, पोस्ट बॉक्स नं. 203 नाला सोपारा तथा मुझे पहचानो के माध्यम से यह विश्लेषण किया गया है कि किस प्रकार ये रचनाएँ समकालीन समाज की जटिलताओं, अंतर्विरोधों और मानवीय संवेदनाओं को गहराई से अभिव्यक्त करती हैं। शोध का निष्कर्ष यह दर्शाता है कि साहित्य अकादमी द्वारा सम्मानित हिंदी उपन्यास केवल साहित्यिक उपलब्धियाँ नहीं हैं, बल्कि वे समय, समाज और मनुष्य की बदलती चेतना के सशक्त दस्तावेज भी हैं।

मुख्य शब्द

साहित्य अकादमी, हिंदी, उपन्यास, पुरस्कार, समकालीन समाज.

साहित्य अकादमी की अवधारणा

भारतीय साहित्य के क्षेत्र में साहित्य अकादमी का योगदान अत्यंत महत्वपूर्ण और विशिष्ट रहा है। यह संस्था भारत की राष्ट्रीय साहित्यिक संस्था के रूप में

जानी जाती है। इसकी स्थापना सन् 1954 में तत्कालीन प्रधानमंत्री पंडित जवाहरलाल नेहरू के नेतृत्व में की गई थी। प्रारम्भ में इसका गठन नागपुर में हुआ था, किंतु बाद में भारत सरकार द्वारा इसका मुख्यालय नई दिल्ली में स्थानांतरित कर दिया गया। साहित्य अकादमी भारतीय साहित्य के संरक्षण, संवर्धन एवं प्रचार–प्रसार का महत्वपूर्ण माध्यम रही है। यह संस्था लेखकों के जीवन, उनके रचनात्मक योगदान तथा साहित्यिक चेतना को समाज के समक्ष प्रस्तुत करने का कार्य करती है। स्थापना के बाद से अब तक साहित्य अकादमी ने लगभग सात दशकों से अधिक की अपनी यात्रा पूरी कर ली है और निरंतर भारतीय साहित्य को नई दिशा प्रदान कर रही है। भारतीय भाषाओं के साहित्य को देश–विदेश तक पहुँचाने में साहित्य अकादमी की भूमिका अत्यंत सराहनीय रही है। विविध भाषाओं के साहित्य का अनुवाद, प्रकाशन एवं प्रसार करना इसके प्रमुख कार्यों में शामिल है। इससे न केवल भाषाई समन्वय स्थापित होता है, बल्कि भारतीय साहित्य की जड़ें भी और अधिक सुदृढ़ होती हैं।

भारत बहुभाषी एवं बहुसांस्कृतिक देश है, जहाँ हिंदी के अतिरिक्त अनेक क्षेत्रीय भाषाएँ प्रचलित हैं। साहित्य, भाषा, समाज और संस्कृति के बीच गहरा अंतर्संबंध विद्यमान है, जिसे साहित्य अकादमी प्रभावी रूप से अभिव्यक्त करती है। यह संस्था पुरस्कारों, साहित्यिक गोष्ठियों, संगोष्ठियों, प्रकाशनों तथा अनुवाद परियोजनाओं के माध्यम से भारतीय साहित्य को समृद्ध बनाने का कार्य करती है।

विचारों के आदान–प्रदान के लिए भाषा मानव जीवन का एक अत्यंत महत्वपूर्ण माध्यम है। भाषाएँ व्यक्ति को अपने भाव, चिंतन और अनुभूतियों को व्यक्त करने की क्षमता प्रदान करती हैं। इसी उद्देश्य को ध्यान में रखते हुए साहित्य अकादमी प्रत्येक वर्ष भारत की 24 प्रमुख भाषाओं में उत्कृष्ट साहित्यिक रचनाओं को सम्मानित करती है। इनमें संविधान की आठवीं अनुसूची में सम्मिलित भाषाओं के साथ–साथ अंग्रेजी और राजस्थानी भाषा भी शामिल हैं। यह पुरस्कार भारतीय साहित्य को प्रोत्साहन देने तथा विभिन्न भाषाओं के साहित्य को व्यापक पहचान दिलाने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। इस सम्मान के अंतर्गत चयनित साहित्यकार को वर्तमान समय में लगभग एक लाख रुपये की नगद धनराशि, साहित्य अकादमी के प्रतीक चिन्ह से युक्त ताम्रपत्र, तथा सम्मान स्वरूप अंगवस्त्र (शाल) प्रदान किया जाता है।

बीसवीं शताब्दी में हिंदी उपन्यासों के क्षेत्र में विषय–वस्तु, शिल्प और दृष्टिकोण तीनों स्तरों पर उल्लेखनीय परिवर्तन देखने को मिलते हैं। इस काल के उपन्यासकारों ने केवल सामाजिक यथार्थ तक ही अपने लेखन को सीमित नहीं रखा, बल्कि बदलती राजनीतिक परिस्थितियों, वैश्वीकरण, शहरीकरण, प्रवासी जीवन, जातीय एवं लैंगिक असमानताओं तथा उत्तर–आधुनिक चिंतन जैसे विविध पहलुओं को भी अपनी रचनाओं में स्थान दिया। साहित्य अकादमी पुरस्कार से सम्मानित हिंदी उपन्यास इसी बहुआयामी दृष्टि और गहन संवेदना को प्रभावशाली ढंग से प्रस्तुत करते हैं।

इक्कीसवीं सदी के हिन्दी उपन्यास अलका सरावगी का उपन्यास 'कलि–कथा वाया बाइपास' सन 1998 में प्रकाशित हुआ। यह उपन्यास 1940 से 1990 के बीच कोलकाता के मारवाड़ी समाज में घटित सामाजिक, सांस्कृतिक और आर्थिक परिवर्तनों का संवेदनशील एवं गहन चित्र प्रस्तुत करता है। किशोर बाबू की जीवन–कथा के माध्यम से यह रचना उस समाज की ऐतिहासिक यात्रा को सामने लाती है, जो एक ओर पुरानी पीढ़ी की जड़ हो चुकी परंपराओं से बंधा हुआ है और दूसरी ओर औपनिवेशिक प्रभावों, देश–विभाजन तथा तीव्र गति से उभरती उपभोक्तावादी संस्कृति के दबावों का सामना कर रहा है। "यह कथा किशोर बाबू की कथा है और कथाकार की उपस्थिति इसमें इतनी ही होगी जितनी कि खाँटी शुद्ध किस्सागोई में होनी चाहिए।"[1]

यह उपन्यास 1925 में जन्मे किशोर बाबू के जीवन को केंद्र में रखता है। हृदय के बाइपास ऑपरेशन के पश्चात वे स्मृतियों की भूल–भुलैया में प्रवेश करते हैं और अपने किशोरकाल की दुनिया में लौट जाते हैं। स्मृतियों के सहारे वे पुनः कलकत्ता की उन्हीं उलझी हुई गलियों और सड़कों पर भटकते दिखाई देते हैं, जहाँ समय मानो एक वृत्ताकार गति में घूमने लगता है। अतीत, वर्तमान और भविष्य की सीमाएँ इस स्मृति–यात्रा में धुँधली हो जाती हैं। इसी क्रम में किशोर बाबू अपने पूर्वजों विशेषतः परदादा रामविलास बाबू की दुनिया में पहुँच जाते हैं, जो इस

कथा का केंद्रीय बिंदु बनता है।

इस उपन्यास में बुर्राबाजार के मारवाड़ी समुदाय का अत्यंत जीवंत और यथार्थपरक चित्रण मिलता है। यह स्पष्ट होता है कि किस प्रकार राजस्थान की शुष्क भूमि से आए व्यापारी वर्ग ने कोलकाता के शहरी परिवेश में स्वयं को स्थापित किया। पीढ़ियों के बीच का वैचारिक संघर्ष उपन्यास का एक प्रमुख पक्ष है, जहाँ एक ओर परंपराओं और नैतिक अनुशासन से बँधी पुरानी सोच है, वहीं दूसरी ओर नई पीढ़ी बदलते समय के अनुरूप नए मूल्यों को अपनाने के लिए संघर्षरत दिखाई देती है। बाजारवाद और उपभोक्ता संस्कृति के प्रभाव से उत्पन्न सांस्कृतिक क्षरण की चिंता भी रचना में गहराई से उभरती है, जहाँ मानवीय संबंध लाभ और वस्तु की भाषा में रूपांतरित होते नजर आते हैं। 1940 के दशक से 1990 तक के सामाजिक, राजनीतिक और सांस्कृतिक उतार–चढ़ावों का पुनर्लेखन इस कृति को केवल एक कथा न बनाकर समय और समाज का महत्त्वपूर्ण दस्तावेज बना देता है। इस प्रकार 'कलि–कथा 'वाया बाइपास' एक व्यक्ति की आत्मकथा से आगे बढ़कर पूरे समाज के सांस्कृतिक संघर्ष और पहचान की खोज की मार्मिक गाथा बन जाती है। "'बाइपास' उपन्यास का शायद बीज शब्द है और वह इंगित करता है आज के 'युगधर्म' की ओर जो मूल समस्याओं से बचकर बगल से सुविधाजनक रास्ते निकालने का है। उपन्यास इस युगधर्म की विडंबना को किशोर बाबू के बाइपास आपरेशन के माध्यम से उजागर करता है, जो अन्ततः उन्हें उन्हीं चीजों की ओर ले जाता है जिन्हें उन्होंने अब तक बाइपास कर रखा था।"[2]

कमलेश्वर द्वारा रचित उपन्यास 'कितने पाकिस्तान' सन–2000 में प्रकाशित हुआ। यह समकालीन हिंदी साहित्य की एक महत्वपूर्ण और विचारोत्तेजक कृति है, जिसे वर्ष 2003 में साहित्य अकादमी पुरस्कार से सम्मानित किया गया। यह उपन्यास केवल 1947 के भारत पाकिस्तान विभाजन की त्रासदी तक सीमित नहीं रहता, बल्कि उससे आगे बढ़कर सांप्रदायिकता, सत्ता की राजनीति, वैचारिक संकीर्णता और मानव इतिहास में बार–बार घटित होते विभाजनों की गहरी पड़ताल करता है। कमलेश्वर यहाँ विभाजन को एक ऐतिहासिक घटना नहीं, बल्कि एक मानसिक और नैतिक प्रक्रिया के रूप में देखते हैं, जो समय–समय पर समाज को भीतर से तोड़ती रही है। 'कितने पाकिस्तान' शीर्षक स्वयं में एक गहरा प्रतीक है, जो यह संकेत देता है कि विभाजन केवल सीमाओं के खिंच जाने से नहीं होता, बल्कि जब–जब मन में घृणा, असहिष्णुता और सांप्रदायिक सोच जन्म लेती है, तब–तब नए 'पाकिस्तान' बनते चले जाते हैं। "इस उपन्यास में कोई पारंपरिक नायक या खलनायक नहीं है। यहाँ समय स्वयं नायक भी है और खलनायक भी, जो कभी मानवता को आगे बढ़ाता है तो कभी उसे विनाश की ओर धकेल देता है।"[3] अंततः यह कृति मानवीय मूल्यों की रक्षा, शांति, सहअस्तित्व और विश्व बंधुत्व की आकांक्षा को स्वर देती है तथा विभाजक राजनीति और सांप्रदायिक मानसिकता पर तीखा सवाल खड़ा करती है।

"कमलेश्वर का यह उपन्यास
मानवता के दरवाजे पर इतिहास
और समय की एक दस्तक है...
इस उम्मीद के साथ कि
भारत ही नहीं, दुनिया भर में
एक के बाद एक दूसरे पाकिस्तान
बनाने की लहु से लथपथ
यह परम्परा अब खत्म हो...।"[4]

मनोहर श्याम जोशी द्वारा रचित 'क्याप' उपन्यास सन् 2001 में प्रकाशित हुआ। हिंदी साहित्य का एक विशिष्ट और चुनौतीपूर्ण उपन्यास है, जिसे वर्ष 2005 में साहित्य अकादमी पुरस्कार से सम्मानित किया गया। यह उपन्यास कुमाऊँ अंचल की भौगोलिक, सामाजिक और सांस्कृतिक पृष्ठभूमि में रचा गया है। "क्या'– मायने कुछ अजीब, अनगढ़, अनदेखा–सा और अप्रत्याशित।"[5] जहाँ 'क्याप' शब्द स्वयं उस अजीब, अनबूझे और रहस्यमय अनुभव को अभिव्यक्त करता है जो जीवन, समाज और इतिहास के भीतर गहराई से व्याप्त है। मध्य हिमालय के वाल्मीकि नगर,

जिसे पहले कस्तूरीकोट कहा जाता था, के माध्यम से लेखक कुमाऊँनी जीवन की जटिलताओं, लोक–संवेदनाओं और सामाजिक संरचनाओं को अत्यंत सूक्ष्मता से सामने लाते हैं।

उपन्यास का कथानक केवल एक स्थान या कुछ पात्रों तक सीमित नहीं रहता, बल्कि वह स्थानीय समाज में व्याप्त शोषण, जातिगत भेदभाव और 'डूम' (अछूत) तथा 'सवर्ण' वर्ग के बीच मौजूद गहरी खाई को उजागर करता है। इसके साथ ही बदलते राजनीतिक और सामाजिक परिदृश्य में आधी–अधूरी आधुनिकता का जो रूप सामने आता है, वह मनुष्य के भीतर के द्वंद्व और असमंजस को और गहरा कर देता है। 'क्याप' केवल एक कथा नहीं रह जाती, बल्कि वह समाज के गहन आत्ममंथन, ऐतिहासिक स्मृति और मनोवैज्ञानिक उलझनों का सघन अनुभव कराती है।

अमरकांत द्वारा रचित उपन्यास 'इन्हीं हथियारों से' सन् 2003 में प्रकाशित हुआ तथा इसे वर्ष 2007 में साहित्य अकादमी पुरस्कार से सम्मानित किया गया। यह हिन्दी साहित्य का एक सशक्त यथार्थवादी उपन्यास है, जिसकी पृष्ठभूमि 1942 के भारत छोड़ो आंदोलन से जुड़ी हुई है। यह कृति स्वतंत्रता संग्राम को केवल ऐतिहासिक घटनाओं की श्रृंखला के रूप में प्रस्तुत नहीं करती, बल्कि उस दौर में जी रहे सामान्य नागरिकों के संघर्ष, उनकी नैतिक दुविधाओं, सामाजिक रूढ़ियों तथा जनजीवन की जटिल वास्तविकताओं को केंद्र में रखती है। बलिया जैसे आंचलिक क्षेत्र को आधार बनाकर लेखक ने स्वतंत्रता आंदोलन को आम जनता के जीवन से जोड़ते हुए उसे एक जीवंत सामाजिक अनुभव का रूप दिया है।

"यह रचना उत्तर प्रदेश के एक छोटे–से जनपद पर केन्द्रित स्वाधीनता आन्दोलन की पृष्ठभूमि पर लिखी गई है। सन् 1942 ई. में 'भारत छोड़ो' जनक्रान्ति के दौरान कुछ दिनों के लिए बलिया में ब्रिटिश शासन समाप्त हो गया था। गाँवों में पंचायत सरकारें कायम हुई थीं परन्तु, यह ऐतिहासिक उपन्यास नहीं है, बल्कि उस आन्दोलन से जुड़े व्यक्तियों के निजी अनुभवों, ऐतिहासिक घटनाओं तथा बयालिस से लेकर स्वतन्त्रता–प्राप्ति तक के समय की एक यथार्थवादी परिकल्पना है। वस्तुतः बलिया के बहाने, एक कल्पित कथा द्वारा इस ऐतिहासिक जमाने का स्मरण किया गया है, जब देश की जनता ने स्वाधीनता के लिए विदेशी हुकूमत के विरुद्ध बगावत का झंडा उठाते हुए जबरदस्त संघर्ष किया, अनगिनत कुर्बानियाँ दीं और भयंकर दमन का सामना किया।"[6] अमरकांत का ध्यान बड़े नेताओं या स्थापित ऐतिहासिक नायकों पर नहीं, बल्कि उन साधारण लोगों पर केंद्रित है जो इस आंदोलन के वास्तविक वाहक थे। लेखक उनके निजी अनुभवों, भय, साहस और सामूहिक चेतना को इस प्रकार प्रस्तुत करता है कि इतिहास जनस्मृति का अंग बन जाता है। यही कारण है कि इस उपन्यास में कोई एक पारंपरिक नायक नहीं मिलता बल्कि पूरा बलिया क्षेत्र और उसकी जनता ही सामूहिक नायक के रूप में सामने आती है, जो बिना आधुनिक हथियारों के, केवल अपने साहस, एकता और जुझारूपन के बल पर सत्ता से टकराती है।

"दोस्तो, भोजपुरी भाषा के इस छोटे–से जिले बलिया के इतिहास पर आपने कभी गौर किया है ? इतिहास भूलने की चीज नहीं है। इतिहास वह दर्पण है, जिसमें हम अपनी खूबियों और कमियों को देख सकते हैं। इनकी जानकारी हमें और ताकतवर बनाकर नए समय की नई चुनौतियों का सामना करने की बुद्धि देती है। यहाँ का इतिहास हमारे देश के इतिहास का ही अंग है, फिर भी हमारी कुछ निजी विशेषताएँ भी हैं।"[7]

काशीनाथ सिंह द्वारा रचित 'रेहन पर रग्घू' उपन्यास सन 2008 में प्रकाशित हुआ। यह समकालीन हिंदी उपन्यासों में भूमंडलीकरण और बाजारवाद के दौर में बदलते मानवीय संबंधों की एक अत्यंत करुण और तीखी अभिव्यक्ति है। यह उपन्यास रघुनाथ के जीवन के माध्यम से उस आधुनिक समाज का यथार्थ सामने लाता है, जहाँ व्यवस्था, सुरक्षा और पारिवारिक भरोसे अचानक टूटकर व्यक्ति को गहरे अस्तित्वगत संकट में धकेल देते हैं। "उपन्यास में केन्द्रीय पात्र रघुनाथ की व्यवस्थित और सफल जिन्दगी चल रही है। सब कुछ उनकी योजना और इच्छा के मुताबिक। अचानक कुछ ऐसा घटित होता है कि उनके जीवन का अर्जित यथार्थ इतना महत्त्वाकांक्षी, आक्रामक, हिंस्र हो जाता है कि मनुष्यता की तमाम सारी आत्मीय, कोमल अच्छी चीजें टूटने, बिखरने और बरबाद होने लगती हैं। इस महाबली आक्रान्ता के प्रतिरोध का जो रास्ता उपन्यास के अन्त में अख्तियार किया गया, वह न केवल विलक्षण और अचूक है बल्कि रेहन पर रग्घू को यादगार व्यंजनाओं से भर देता है।"[8] रघुनाथ, जो एक

सेवानिवृत्त शिक्षक हैं और अब तक अनुशासित, सधा हुआ जीवन जीते आए हैं, बदलते सामाजिक ढाँचे, बेटे की महत्वाकांक्षाओं और बाजार–संचालित मूल्यों के बीच स्वयं को असहाय और अप्रासंगिक महसूस करने लगते हैं।

उपन्यास में भूमंडलीकरण के प्रभाव को केवल आर्थिक बदलाव के रूप में नहीं, बल्कि संवेदनाओं के क्षरण के रूप में चित्रित किया गया है। यहाँ रिश्ते भावनाओं पर नहीं, बल्कि जरूरत और लाभ की कसौटी पर टिके दिखाई देते हैं। रघुनाथ का संघर्ष वस्तुतः उस पूरे मध्यवर्ग का संघर्ष है, जो न तो पुराने मूल्यों को पूरी तरह छोड़ पा रहा है और न ही नए समय की निष्ठुरताओं को आत्मसात कर पा रहा है। गाँव से शहर की ओर बढ़ते हुए बनारस के आसपास के तेजी से बदलते इलाके, कॉलोनियों का उभरना और अमेरिका जैसे सपनों की चमक ये सभी उपन्यास में उस भयावह संक्रमण को रेखांकित करते हैं, जिसमें जड़ें, स्मृतियाँ और संबंध धीरे–धीरे खोते चले जाते हैं।

मृदुला गर्ग द्वारा रचित 'मिलजुल मन' सन 2009 में प्रकाशित हुआ। यह एक संवेदनशील और अर्ध–आत्मकथात्मक हिंदी उपन्यास है, जिसे वर्ष 2013 में साहित्य अकादमी पुरस्कार से सम्मानित किया गया। यह कृति दो बहनों मोगरा और गुलमोहर के जीवन को केंद्र में रखकर पिछले लगभग पचास वर्षों के पारिवारिक, सामाजिक और भावनात्मक अनुभवों को अत्यंत आत्मीयता और ईमानदारी के साथ प्रस्तुत करती है। उपन्यास केवल व्यक्तिगत स्मृतियों का वृत्तांत नहीं है, बल्कि वह स्त्री जीवन के संघर्ष, संबंधों की जटिलता और आत्मसम्मान की तलाश का व्यापक सामाजिक दस्तावेज बन जाता है। "दुविधा के अलावा और कई मायनों में अजब था वह वक्त! सदी भर पहले देखा. आजादी का सपना पूरा हुआ था पर आजादी का जो सुंदर, सजीला, अहिंसक चेहरा हमने खयालों में तैयार किया था, मुल्क के तक्सीम होने के साथ, सपने की तरह तिड़क कर बिखर गया। सपने के टूटने पर, हमने असलियत में जीना कबूल नहीं किया, नया सपना पाल लिया। दुविधा में आ मिला, मासूमियत भरा यकीन कि हम गुटनिरपेक्ष और मिली–जुली अर्थ व्यवस्था का ऐसा संसार बसाएंगे कि दुनिया हमारा लोहा मानेगी। हम विश्व गुरु कहलाएंगे।"[9] उपन्यास की संरचना आत्मकथात्मक है, जहाँ मोगरा के माध्यम से स्वयं लेखिका के अनुभव और गुलमोहर के जीवन के प्रसंग एक–दूसरे में घुलते–मिलते हुए आगे बढ़ते हैं। यह निजी और सार्वजनिक जीवन के बीच की सीमाओं को धुंधला कर देता है, जिससे पाठक को ऐसा अनुभव होता है मानो वह किसी के अत्यंत निजी संसार में प्रवेश कर रहा हो। मृदुला गर्ग ने अपने जीवन और परिवेश को बिना किसी संकोच या सजावटी भाषा के प्रस्तुत किया है, जिससे कथा में गहरी प्रामाणिकता आ जाती है।

'मिलजुल मन' का केंद्रीय सरोकार पारिवारिक रिश्तों की जटिल बुनावट, पितृसत्तात्मक समाज में स्त्री की स्थिति, प्रेम, त्याग और स्त्री के आत्मसम्मान की खोज से जुड़ा है। उपन्यास यह दिखाता है कि स्त्री केवल पीड़ित या सहनशील प्राणी नहीं है, बल्कि वह अपने ममत्वपूर्ण स्त्रीत्व को स्वीकार करते हुए, संघर्षों के बीच भी अपने 'स्व' को पहचानने और स्थापित करने की क्षमता रखती है। मोगरा और गुलमोहर के जीवन अनुभव यह स्पष्ट करते हैं कि स्त्री की मुक्ति किसी एक विद्रोह या निर्णय से नहीं, बल्कि निरंतर आत्मसंघर्ष और आत्मबोध की प्रक्रिया से संभव होती है।

चित्रा मुद्गल द्वारा रचित उपन्यास 'पोस्ट बॉक्स नं० 203, नाला सोपारा' सन 2018 में प्रकाशित हुआ। यह एक अत्यंत संवेदनशील, साहसी और गहन मानवीय हिन्दी उपन्यास है, जिसे साहित्य अकादमी पुरस्कार से सम्मानित किया गया। यह कृति किन्नर समुदाय के जीवन की उन सच्चाइयों को उजागर करती है, जिन्हें समाज प्रायः देखने से कतराता रहा है। उपन्यास केवल हाशिए पर पड़े एक समुदाय की कथा नहीं कहता, बल्कि सामाजिक बहिष्कार, अपमान, असुरक्षा और मुख्यधारा में स्वीकार्यता की जटिल प्रक्रिया को एक गहरी मानवीय दृष्टि के साथ प्रस्तुत करता है। बिन्नी (विनोद) नामक किन्नर पात्र के जीवन के माध्यम से यह रचना उस समाज के क्रूर और संवेदनहीन चेहरे को सामने लाती है, जहाँ पहचान, प्रेम और सम्मान प्राप्त करने की भारी कीमत चुकानी पड़ती है।

उपन्यास का सर्वाधिक मार्मिक पक्ष बिन्नी और उसकी माँ के बीच स्थापित भावनात्मक संबंध है, जिसे पत्रों के माध्यम से अभिव्यक्त किया गया है। यह पत्रात्मक शैली केवल एक कथात्मक तकनीक नहीं है, बल्कि दो विखंडित संसारों को जोड़ने का सशक्त माध्यम बन जाती है। माँ के प्रति बिन्नी का प्रेम, उसकी तड़प और स्वीकार किए जाने

की गहरी आकांक्षा पाठक को भीतर तक झकझोर देती है। यह संबंध इस तथ्य को रेखांकित करता है कि किन्नर होना केवल एक सामाजिक पहचान का प्रश्न नहीं, बल्कि गहरे मानवीय रिश्तों, भावनाओं और संवेदनाओं से जुड़ा हुआ अनुभव है, जिसे समाज निर्ममता से नकार देता है। "अपने ही घर से निकाल दिए गए विनोद की मर्मांतक पीड़ा उसके अपनी बा को लिखे पत्रों में इतनी गहराई से उजागर हुई है कि पाठक खुद यहं सोचने पर विवश हो जाता है कि क्या शब्द बदल देने भर से अवमानना समाप्त हो सकती है? गलियों की गाली 'हिजड़ा' को 'किन्नर' कह देने भर से क्या देह के नासूर छिटक सकते हैं। परिवार के बीच से छिटककर नारकीय जीवन जीने को विवश किए जाने वाले ये 'बीच के लोग' आखिर मनुष्य क्यों नहीं माने जाते।"[10]

संजीव द्वारा रचित उपन्यास 'मुझे पहचानो' सन 2023 में प्रकाशित हुआ। यह एक अत्यंत सशक्त, साहसी और वैचारिक हिन्दी उपन्यास है, जिसे साहित्य अकादमी पुरस्कार से सम्मानित किया गया। यह कृति सती प्रथा के ऐतिहासिक संदर्भ को आधार बनाकर पुरुषसत्तात्मक समाज, पितृसत्ता तथा धार्मिक–सांस्कृतिक पाखंड की क्रूर संरचनाओं को गहराई से उजागर करती है। उपन्यास की प्रेरणा राजा राममोहन राय की भाभी के साथ हुए अत्याचारों से जुड़ती है, किंतु लेखक इसे मात्र इतिहास की पुनरावृत्ति नहीं बनने देते। वे एक दलित स्त्री के संघर्ष के माध्यम से इसे व्यापक सामाजिक और वैचारिक विमर्श में रूपांतरित कर देते हैं।

'मुझे पहचानो' का केंद्रीय सरोकार उस अमानवीय सती प्रथा से है, जिसे लंबे समय तक संस्कृति, परंपरा और गौरव के नाम पर महिमामंडित किया जाता रहा। उपन्यास स्पष्ट करता है कि यह प्रथा किसी धार्मिक आस्था की उपज नहीं, बल्कि स्त्री देह और चेतना पर पुरुष सत्ता के वर्चस्व का परिणाम है। संजीव इस हिंसा को केवल बाहरी अत्याचार के रूप में नहीं देखते, बल्कि उसके पीछे कार्यरत मानसिकता, सामाजिक सहमति और सत्ता–संरचना को भी बेनकाब करते हैं, जिससे सती प्रथा एक संगठित सामाजिक अपराध के रूप में सामने आती है। "सती होने की प्रथा प्राचीन काल से ही चली आ रही है। इस अमानवीय परंपरा के पीछे मूल कारक सांस्कृतिक गौरव है। सांस्कृतिक गौरव के साथ शुचिता का प्रश्न स्वतः उभरता है। इसमें समाहित है वर्ण की शुचिता, वर्ग की शुचिता, रक्त की शुचिता और लैंगिक शुचिता इत्यादि। इसी क्रम में पुरुषवादी यौन शुचिता की परिणति के रूप में सतीप्रथा समाज के सामने व्याप्त होती है।"[11] उपन्यास में प्रतिशोध और पहचान की यात्रा समानांतर रूप से चलती है।

निष्कर्ष

निष्कर्षतः यह कहा जा सकता है कि साहित्य अकादमी और इक्कीसवीं सदी के हिंदी उपन्यासों के बीच एक गहरा और सार्थक संबंध स्थापित होता है। साहित्य अकादमी पुरस्कार से सम्मानित उपन्यास न केवल अपने समय की साहित्यिक गुणवत्ता का प्रतिनिधित्व करते हैं, बल्कि वे समकालीन समाज की जटिल वास्तविकताओं, ऐतिहासिक अनुभवों और मानवीय संघर्षों को भी सशक्त रूप में सामने लाते हैं। इन उपन्यासों में स्त्री, दलित, अल्पसंख्यक, किन्नर तथा मध्यवर्गीय जीवन के विविध पक्षों को जिस संवेदनशीलता और वैचारिक गहराई के साथ चित्रित किया गया है, वह हिंदी उपन्यास को नए आयाम प्रदान करता है। साहित्य अकादमी की भूमिका यहाँ केवल एक पुरस्कार देने वाली संस्था तक सीमित नहीं रह जाती, बल्कि वह हिंदी साहित्य को व्यापक राष्ट्रीय और अंतरराष्ट्रीय पहचान दिलाने वाली संस्था के रूप में उभरती है। इस प्रकार, इक्कीसवीं सदी के हिंदी उपन्यास और साहित्य अकादमी मिलकर हिंदी साहित्य को न केवल समृद्ध करते हैं, बल्कि उसे समय–सापेक्ष, विचारोत्तेजक और मानवीय मूल्यों से संपन्न भी बनाते हैं।

संदर्भ सूची

1. सरावगी, अलका (2002) *कलि– कथाः वाया बायपास,* आधार प्रकाशन, पंचकूला।
2. सरावगी, अलका (2002) *कलि– कथाः वाया बायपास,* आधार प्रकाशन, पंचकूला।
3. कमलेश्वर (2024) *कितने पाकिस्तान,* राजपाल एण्ड सन्स, दिल्ली।
4. कमलेश्वर (2024) *कितने पाकिस्तान,* राजपाल एण्ड सन्स, दिल्ली।

5. जोशी, मनोहर श्याम (2024) *क्याप,* वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली।
6. अमरकांत (2003) *इन्हीं हथियारों से,* राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली।
7. अमरकांत (2003) *इन्हीं हथियारों से,* राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली।
8. सिंह, काशीनाथ (2012) *रेहन पर रग्घू,* राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली।
9. गर्ग, मृदुला (2019) मिलजुल मन, सामायिक प्रकाशन, नई दिल्ली, पृ. 9, 10।
10. मुद्गल, चित्रा (2019) *पोस्ट बाक्स न.203 नाला सोपारा,* सामायिक प्रकाशन, नई दिल्ली।
11. संजीव (2020) *मुझे पहचानो,* सेतु प्रकाशन, नोएडा।

****